UGC APPROVED JOURNAL - 47746

© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed

ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 10 | October – December 2017

मोहनदास कहानी में चित्रित समस्याएँ

शोध–निर्देशक :

प्रो. कृष्णमोहन झा
हिन्दी विभाग
असम विश्वविद्यालय, सिल्चर

शोधार्थी :

सत नारायण
पंजीयन संख्या :
पी.एच.डी./2746/15
असम विश्वविद्यालय, सिल्चर

'मोहनदास' उदय प्रकाश द्वारा रचित गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित और लम्बे सत्याग्रह पर आधारित एक महाकाव्यात्मक कहानी है। रचनाकार का मानना है कि अहिंसा की नींव पर ही व्यवस्था में परिवर्तन हो सकता है। कहानी का नायक मोहन दास केवल एक पात्र न होकर एक ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें दलित, शोषित और शिक्षित बेरोज़गार सम्मिलित हैं। यह एक लम्बे संघर्ष की कहानी है जिसका नायक गाँधीवादी सिद्धांतों पर चलता हुआ और अपनी अस्मिता के संकट से जूझता हुआ अंत में भले ही पराजित हो जाता है, लेकिन पाठकों के मन में एक ऐसी गहरी टीस छोड़ जाता है कि पाठक का उससे बाहर निकलना मुश्किल हो जाता है। प्रस्तुत कहानी पर अपने विचार प्रकट करते हुए गिरीश पटेल लिखते हैं–**''उदय प्रकाश की लम्बी कहानी 'मोहनदास' में जीवन के यथार्थ की स्पष्ट झलक मिलती है। इस रचना में जीवन और साहित्य के सारे रंग दृष्टिगोचर होते हैं। यह कहानी न केवल लेखक के गहरे अध्ययन को दर्शाती है बल्कि सामाजिक परिवेश और वर्तमान काल की विसंगतियों को भी दर्शाती है।''1**

कहानी का कथ्य मोहन दास के रूप में एक ऐसे दलित आदमी को लेकर रचा गया है, जो योग्य है, शिक्षित है, मेहनती है और प्रतिभासम्पन्न है, बावजूद इसके बेरोज़गार है क्योंकि उसके पास जुगाड़ नहीं, रिश्वत नहीं तथा तिकड़मबाजी जानता नहीं। उसे धीरे–धीरे समझ में आता है कि ईमानदारी और खालिस योग्यता का अब कोई मूल्य नहीं रह गया है तथा दुनिया में सफलता पाने के लिए पूँज़ी, सत्ता और ताकत चाहिए। इस कहानी के माध्यम से लेखक ने अस्मिता को बचाने के संकट, भ्रष्ट प्रशासनिक व्यवस्था, दोषपूर्ण न्याय प्रणाली, बेरोज़गारी की समस्या, पंचायती राज की तानाशाही, स्त्रियों की दीन दशा, स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा अपना उल्लू सीधा करने की प्रवृत्ति, दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली, भूमंडलीकरण, औद्योगिकरण और बाज़ारवाद के प्रभाव से कुटीर उद्योगों का विनाश व आर्थिक तंगी, जातिवाद, नैतिक मूल्यों का पतन आदि समस्याओं की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

कहानी की शुरुआत में लेखक ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली की दोषपूर्ण व्यवस्था की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट किया है। मौजूदा शिक्षा व्यवस्था रोज़गारोन्मुख न होने के कारण हर साल बेरोज़गारों की फौज़ खड़ी करती जा रही है। सुशिक्षित, योग्य और मेहनती नौजवान दर–दर की ठोकरें खाने को मज़बूर हैं। अच्छे अंक और रैंक मिलने के बावजूद भी उन्हें नौकरी नहीं मिल पाती और ना ही वे किसी काम को करने के काबिल बन पाते हैं। देश का युवा हताश और निराश है। कहानी का नायक मोहनदास भी एम.जी. शासकीय डिग्री कॉलेज़ से बी.ए. की परीक्षा फर्स्ट डिविज़न और विश्वविद्यालय में दूसरा स्थान हासिल करके उत्तीर्ण करता है, बावजूद इसके उसे कोई नौकरी नहीं मिल पाती और ना ही उस शिक्षा के बल पर वह अपना कोई स्वयं का रोज़गार ही शुरु कर पाता है।

आज भ्रष्टाचार हमारे समाज में हर जगह अपनी जड़ें जमा चुका है। अपने फायदे के लिए लोग कुछ भी कर गुजरने को तैयार रहते हैं। सरकारी तंत्र में बिना चढ़ावा चढ़ाए कोई काम बेहद मुश्किल है। जिसके पास पैसा और ताकत है वह सब कुछ पा लेता है और गरीब लोगों को उनके हकों से महरूम कर दिया जाता है। रिश्वत और सिफारिश के दम पर नाकाबिल लोग नौकरी पा लेते हैं और योग्य व मेहनती युवक अच्छा रोज़गार पाने के लिए भटकते रहते हैं। कहानी का नायक नौकरी के लिए बार–बार परीक्षा और साक्षात्कार देता है। परीक्षा में अव्वल आने और अच्छा साक्षात्कार होने के बावजूद उसे नौकरी नहीं मिल पाती क्योंकि उसके पास न तो पैसा है, न सिफारिश और न ही वह चापलूसी करना जानता है। बतौर उदय प्रकाश–**''मोहन दास हर ज़गह जाता। लिखित परीक्षा में सबसे ऊपर रहता लेकिन इंटरव्यू होता तब खारिज कर दिया जाता। वह पाता कि उसकी जगह आठवीं–दसवीं पास, थर्ड–सेकेंड डिवीज़न बी.ए. वाले लड़के नौकरियों में ले लिए जाते। उनमें से हर किसी के पास कोई–न–कोई सिफारिश रहती थी।.....धीरे–धीरे मोहन दास को यह भी पता चला कि कई नौकरियों की तो बोली लगती है। अगर उसके बाप काबा दास के पास लाख–पचास हज़ार होते, तो दो–तीन नौकरियाँ उसके हाथ से छूटीं, जिनमें वह घूस देकर बहाल हो गया होता।''2**

भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी और सिफारिश के भयंकर और निकृष्ट रूप के दर्शन हमें तब होते हैं जब ओरियंटल कोल माइंस में सुपरवाइज़र की नौकरी के लिए साक्षात्कार और शारीरिक परीक्षा देने आए लगभग डेढ़ सौ प्रतिभागियों में वह प्रथम स्थान पर आता है और उसके सभी प्रमाण–पत्र व अंक तालिकाएँ जमा करवा ली जाती हैं, लेकिन उसे नियुक्ति न देकर दूसरे गाँव के दबंग व्यक्ति को उसी नाम और उन्हीं प्रमाण–पत्रों के आधार पर नियुक्त कर दिया जाता है। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है। मोहन दास को अपने साढू गोपाल दास से पता चलता है कि **''नगेंद्र नाथ ने भर्ती दफ्तर के बाबू को पटाकर मोहन दास वाली नौकरी का लेटर अपने आवारा बेटे बिसनाथ को दे दिया। .....और हर जगह मोहन दास की जगह अपना फोटो लगा कर अदालती हलफनामे से लेकर गजेटेड अफसर तक से उसे प्रमाणित करा लिया। इस तरह बिसनाथ ओरियंटल कोल माइंस में मोहन दास बल्द काबा दास, जात कबीरपंथी विश्वकर्मा बन कर इत्मीनान से डिपो सुपरवाइज़र की नौकरी करने लगा और दस हज़ार की माहवारी पगार लेने लगा।''3**

कहानी में वर्तमान दोषपूर्ण न्याय प्रणाली की भी पोल खोली गई है। अपने साथ हुई गड़बड़ का पता लगने पर जब वह हक पाने के लिए कोल माइंस जाता है तो भर्ती बाबू अपना भेद खुलने के डर से उसे गार्डों से पिटवाकर भगा देता है। जब वह अपने साथ हुई धोखाधड़ी की शिकायत कोल माइंस के जनरल मैनेजर एस. के. सिंह से करता है तो मैनेजर वेलफेयर ऑफिसर ए.के. श्रीवास्तव को इन्क्वायरी करने के लिए नियुक्त करता है और हद तो इस बात की है कि इन्क्वायरी ऑफिसर कोई जाँच किए बगैर जाँच के नाम पर महज खानापूर्ति करता है। वह बिसनाथ की पत्नी अमिता के हाथ से परोसे गए खाने को खाकर और नशे में धुत होकर उसकी नाभी पर नज़रें गड़ाए खुद स्वीकार करता है कि **''असल में कागज़ी कार्रवाई है। पूरी तो करनी ही पड़ती है।''4** और अपनी इन्क्वायरी रिपोर्ट कुछ इस तरह प्रस्तुत करता है–**''मोहनदास बल्द काबा दास ग्राम पुरबनरा, थाना और जिला अनूपपुर, मध्यप्रदेश के बारे में उठाई गईं सारी आपत्तियाँ निराधार हैं।''5**

इससे पता चलता है कि आज़ सरकारी तंत्र में इन्क्वायरी मात्र एक औपचारिकता बनकर रह गई हैं। मोहनदास जब इससे संतुष्ट नहीं होता तो वकील हर्षवर्द्धन सोनी के साथ मिलकर न्यायिक दंडाधिकारी जी.एम. मुक्तिबोध की अदालत में अपना हक पाने के लिए मुकद्दमा दर्ज़ करवाता है। न्यायिक दंडाधिकारी के आदेश पर दुर्ग और अनूपपुर जिलों के कलेक्टरों द्वारा करवायी गई शासकीय जाँच सबको अवाक् कर देती है और आम व निरीह व्यक्ति का न्याय व्यवस्था पर से भरोसा उठा देती है। दोनों जिलाधीशों की जाँच में पाया जाता है कि **''दस्तावेज़ों, आवश्यक साक्ष्यों, परिस्थितिगत प्रमाणों, कई ग्रामीणों और पंचायत सदस्यों से पूछताछ के बाद निर्विवाद रूप से यह सिद्ध होता है कि मोहन दास मोहन दास ही है, विश्वनाथ नहीं।''6** मोहनदास के पक्ष में

गवाही देने वाले गवाह या तो अदालत में हाज़िर नहीं होते और यदि होते हैं तो पैसे के लालच या डर की वजह से बिसनाथ के ही असली मोहन दास होने के पक्ष में गवाही देते हैं। इस तरह हमारी भ्रष्ट व अंधी न्यायिक व्यवस्था सही को गलत और गलत को सही साबित कर देती है। मोहन दास के इंसाफ पाने की लड़ाई पर विचार व्यक्त करते हुए गिरिश पटेल कहते हैं–**''एक कर्त्तव्यनिष्ठ वकील के सारे प्रयासों और केस से संबंधित जज की सद्भावनाओं के बावजूद वर्तमान स्थिति में फैले भ्रष्टाचार, चारित्रिक पतन, भौतिक सुखों को प्राप्त कर लेने की अंधी दौड़, वर्ग और जाति विभेद, आर्थिक पृष्ठभूमि और सामाजिक विषमताओं के चलते मोहन दास न्याय के लिए तरसता रहता है।''7** एक ईमानदार जज जब सही फैसला देता है तो दबंग लोग उसका तबादला करवा देते हैं और तनाव के परिणामस्वरूप वह ब्रेन हैमरेज का शिकार हो जाता है। एक ईमानदार जज, संवेदनशील मित्र के रूप में वकील और अन्य जद्दोजहद के बावजूद मोहनदास का जबर और शातिर व्यवस्था के आगे हार जाना दरअसल में मौजूदा कानून व्यवस्था की कुरूपता का नग्न रूप में प्रस्तुतिकरण है।

पुलिस तंत्र में फैले भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के धंधे को भी कहानी में उजागर किया गया है। जब असलियत का पता लगाने मोहन दास कोल माइंस के लेनिन नगर जाता है तो बिसनाथ का दोस्त पुलिस इंस्पेक्टर विजय तिवारी उसे दोबारा वहाँ दिखाई देने पर गाड़ी ऊपर चढ़ाने और कॉलरी की भट्ठी में डालकर राखड़ बना देने की धमकी देता है। कहानी के अंत में जब बिसनाथ की नौकरी चली जाती है तो वह पुलिस से मिलीभगत करके थाने से जमानत में अपना नाम मोहन दास ही रहने देता है और बाहर आकर जब चोरी–डकैती या अन्य गलत काम करता है तो पुलिस जान–बूझकर असली मोहन दास को पकड़ती है और मार–मारकर उसकी हड्डी–पसली तोड़ देती है, जिससे पता चलता है कि हमारी पुलिस ज़रा–से पैसे के लिए कुछ भी अनैतिक काम करने के लिए तत्पर रहती है।

लेखक ने कहानी के माध्यम से बालश्रम की समस्या की ओर भी पाठकवर्ग का ध्यान आकर्षित किया है। मोहनदास का आठ साल का बेटा स्कूल में पढ़ने के साथ–साथ बगल के दुर्गा ऑटो वर्क्स में गाड़ियों में हवा भरने, पंक्चर जोड़ने और स्कूटर–मोटर साइकिल की रिपेयर में हेल्पर का काम करके अपनी पढ़ायी का खर्च खुद उठाने के साथ–साथ घर के खर्च को हल्का करने की कोशिश करता है। कहने का अर्थ है कि वह आत्मनिर्भर है। बेटी शारदा जो मात्र छह साल की है, जिसकी अभी खाने–खेलने की उम्र है, दूसरी कक्षा में पढ़ती है और स्कूल के बाद बिछिया टोला में जाती है और वहाँ बिसनाथ के बेटे को संभालने के साथ–साथ घरेलू काम में हाथ बंटाकर रात को घर लौटती है। बदले में उसे रात का खाना और तीस रुपये महीना मिलता है। लेखक के शब्दों में कहें तो दोनों 'आत्मनिर्भर' हैं और देश में बाल मज़दूरों की स्थिति तथा मजबूरी का जीता–जागता उदाहरण हैं।

जातिवाद, भाई–भतीजावाद और ऊँच–नीच जैसी सामाजिक समस्याओं का बखान भी कहानी में जगह–जगह पर किया गया है। दलित लोगों को कैसे हर जगह अन्याय या अपमान का सामना करना पड़ता है, इसके जीवंत रूप से कहानी हमें परिचित करवाती है। समाज के निचले तबके या दलितों के साथ कैसा सलूक किया जाता है, इसके बारे में डॉ श्यौराज सिंह 'बेचैन' लिखते हैं कि–**''हरिजनों को मानव अधिकारों से वंचित कर उन्हें भोजनालयों, धोबीघाट, नाई की दुकान और चाय की दुकानों, उपहार गृहों, धर्मशालाओं, स्कूलों, कुएँ, तालाब, नल, झरने, नदी तथा डाकघर तक में अछूतों को पैर नहीं रखने दिए जाते।''8** उन पर तरह–तरह की फब्तियाँ कसी जाती हैं, सरकारी योजनाओं में बंदर बांट की जाती है। बड़ी जाति के लोग सब कुछ हड़प जाते हैं और गरीबों व दलितों को उनके हक से वंचित कर दिया जाता है। बतौर लेखक–**''मोहन दास देखता है कि**

सरकार द्वारा ग्राम पंचायत के लिए हैंडपंप स्वीकृत होते तो वे बड़े लोगों के घर के सामने लग जाते। शिक्षाकर्मी की नियुक्ति होती, महिलाओं के लिए आंगनबाड़ी और शिक्षिका का पद निकलता, इंदिरा आवास योजना में घर बनाने के लिए अनुदान मिलता, कुएँ और खेत की मरम्मत के लिए ग्रामीण विकास विभाग से रुपए आते, नेहरू रोजगार योजना में शिक्षित बेरोजगारों के लिए कोई परियोजना आती तो वह सब उन्हीं लोगों के बीच बंट जाती। शारदा और देव दास बताते कि स्कूल में दोपहर जो दलिया बंटती, उसमें भी भेदभाव होता।''9 शिक्षित और सक्षम होने के बावजूद नौकरी या रोजगार के समय उसकी जाति या भाई–भतीजावाद आड़े आ जाते और परिणामस्वरूप वह फिर वंचित रह जाता। लेखक लिखता है कि–**''एक बार साक्षरता का काम भी आया। शिक्षाकर्मी का अस्थायी काम उसे मिल सकता था। लेकिन बाद में पता चला कि जिस अफसर के अधीन यह काम था वह अपनी जाति या एक दो राजनीतिक पार्टियों के लोगों को ही उसमें भर्ती कर रहा था। मोहन दास नीची जात का था और किसी भी पार्टी का सदस्य नहीं था।''10**

नारी शोषण की समस्या और स्त्रियों की दीन–हीन दशा के दर्शन भी कहानी में होते हैं। मोहन दास की पत्नी कस्तूरी घर का पूरा काम करने के साथ–साथ बाहर मजदूरी करती है और समय बचने पर पति के साथ सब्जियाँ उगाने के काम में भी हाथ बंटवाती है। सुंदर, गरीब और दलित होने के कारण गांव के आवारा लड़कों की निगाह उस पर टिकी रहती है और वे उसे फंसाने के चक्कर में लगे रहते हैं। मोहन दास के सहपाठी इंस्पेक्टर विजय तिवारी द्वारा अपनी भैंसों की देखभाल का ऑफर भी इसी गंदी मानसिकता को उजागर करता है कि किस तरह दबंग लोग येन–केन–प्रकारेण गरीब औरतों का शोषण करने की ताक में रहते हैं।

पंचायती राज़ के षड़यंत्र और लोकल तंत्र की तानाशाही का उल्लेख भी कहानी में किया गया है। कहानी में दर्शाया गया है कि किस तरह पंचायत और लोकल अफसर मिलकर गलत को सही और सही को गलत साबित कर देते हैं और गरीब लोगों का हक छीनते हुए ज़रा भी नहीं लजाते। पैसे या जाति के आधार पर वे बड़े लोगों का साथ देते हैं और सब कुछ उनकी सहूलियत के अनुसार परोस देते हैं।

भूमंडलीकरण, औद्योगिकरण और बाज़ारवाद के प्रभाव से कुटीर उद्योगों का विनाश व समाज में फैली आर्थिक समस्याओं का चित्रण भी लेखक ने किया है। उद्योगों और बाजार ने आज लोगों के काम धंधे छीन लिए हैं। सभी काम मशीनों से होने के कारण मोमबत्ती, अगरबत्ती, सूपा–चटाई, टोकरी, सिलाई जैसे कुटीर उद्योगों पर संकट के बादल मंडराने लगे हैं। लोग बेरोजगार हो रहे हैं। सामंतवाद के शिकंजे से अभी वे पूरी तरह मुक्त नहीं हुए हैं और फिर से उन्हें पूँजीवाद के खूनी पंजे दबोच लेते हैं। उनका आर्थिक शोषण हो रहा है। उन्हें अपने काम के बदले सही मजदूरी नहीं मिल पाती, परिणामस्वरूप छोटे मजदूर और किसान आत्महत्या करने को मजबूर हैं। कहानी में दर्शायी गई घटना आज के आर्थिक परिदृश्य को दर्शाने के लिए काफी हैं। **''पास के गांव का बलबहा का बिसेसर, जिसने ग्रामीण बैंक से कर्ज लेकर सोयाबीन की खेती की थी, दो महीना पहले अपने खेत की नीलामी से बचने के लिए बिजली के खंभे पर चढ़कर नंगी तार से चिपक कर मर गया था। छोटे किसान और खेत मजदूर गांव छोड़–छोड़ कर शहर भाग रहे थे।''11** घर की आर्थिक तंगी के कारण मोहन दास अपने पिता की टी.बी. का इलाज नहीं करा पाता और अंततः वह दम तोड़ देता है। पैसों के अभाव में माँ पुतली बाई का मुफ्त चिकित्सा शिविर में आँखों का ऑप्रेशन होता है और वे जीवन भर के लिए अपनी आँखों की रोशनी गंवा बैठती हैं। वह अपने बच्चों को अच्छे स्कूल में नहीं पढ़ा पाता। आर्थिक तंगी की सबसे बड़ी विडम्बना देखिए कि घर में पुत्र जन्म होने पर सभी लोग खुश होते हैं, लेकिन कहानी का नायक बेटा जन्मने पर दुखी है। उसके कारण घर में बढ़े आर्थिक खर्च की चिंता उसकी खुशी को लील लेती है। उसकी असहायता को लेखक ने कुछ इस प्रकार से प्रकट किया है–**''एक और पेट ने आज के दिन घर में जन्म ले**

लिया। अब कम से कम छह–आठ महीने तक हर रोज़ आधा किलो गाय के दूध का इंतज़ाम करना होगा। कस्तूरी के लिए महीने भर देसी सोंठ, गुड़ तथा घी और हल्दी के साथ भात। छठी, बरहों और पसनी (अन्नप्राशन) में नात रिश्तेदारों को खिलाने–पिलाने में खर्चा ऊपर से।''12 इससे बड़ी आर्थिक विड़म्बना और क्या हो सकती है?

अपना हक पाने के लिए आज गरीब आदमी न्यायालय तो जाना चाहता है लेकिन वहाँ के भारी भरकम खर्च को वहन करना उसके बस की बात नहीं है। इसलिए वह चाहकर भी केस दर्ज नहीं कर पाता और न्याय से वंचित रह जाता है या रख दिया जाता है। संक्षेप में कहें तो न्याय मिलता नहीं बल्कि खरीदा जाता है। गरीब होने के कारण न्याय खरीदना मोहन दास के बस से बाहर की बात थी। संयोगवश उसकी मुलाकात हर्षवर्द्धन सोनी वकील से होती है और वह कम से कम खर्च में केस लड़ने के लिए तैयार होता है तो उतने पैसे भी वह नहीं जुटा पाता, उल्टा वकील को खुद ही केस दाखिल करने के लिए पैसों का जुगाड़ करना पड़ता है–**''हर्षवर्द्धन समझ गया कि मोहन दास को अदालत से न्याय दिलाने के लिए उसे रुपये खुद ही इकट्ठा करने पड़ेंगे। उसने एक हज़ार अपने पास से लगाया, दो हज़ार कुछ दोस्तों से मांगा और बाकी रुपये लायंसक्लब के चैरिटी फंड से डोनेशन में लिये। यानि संक्षेप में जुगाड़ हो गया।''13**

देश की चिकित्सा व्यवस्था में फैले भ्रष्टाचार और स्वयं सेवी संस्थाओं के उल्लू सीधा करने की प्रवृत्ति पर भी करारा व्यंग्य कहानी में देखने को मिलता है। बंसहर पलीहा लोगों की उस बस्ती में एक समाज सेवी संस्था के युवक–युवती आते हैं और अन्य लोगों की तरह पुतली बाई और काबा दास के ईलाज के लिए कुछ करने का आश्वासन देते हैं, लेकिन जो कोरा आश्वासन ही साबित होता है और मौका पाते ही सरकारी डोनेशन के पैसे डकारकर शहर भाग जाते हैं। अस्पताल में आया एक ईमानदार डॉक्टर मोहन दास के पिता काबा दास के लिए मुफ्त में टी.बी. की दवाइयों का प्रबंध करता है लेकिन उसका भी जल्द ही तबादला करा दिया जाता है, क्योंकि वह अन्य डॉक्टरों के दवाइयों की सरकारी खरीद के कमीशन की बंदर बांट में कभी भी रोड़ा बन सकता है। इस प्रकार लेखक ने चिकित्सा के क्षेत्र में फैले कमीशनखोरी के धंधे की ओर पाठकवर्ग का ध्यान दिलवाने की कोशिश की है।

नैतिक मूल्यों के ह्रास की समस्या को लेखक ने बड़े पुरज़ोर तरीके से उठाया है। आज समाज में नैतिकता नाम की कोई चीज़ नहीं बची है। अपने फायदे के लिए लोग किसी की पहचान तक को छीन लेने से परहेज़ नहीं करते। उन्हें इस बात की ज़रा–सी भी शर्म नहीं कि समाज के लोग क्या कहेंगे। पैसे के लिए सरकारी अफसर, पुलिस, डॉक्टर सब बिकने के लिए तैयार हैं।

और कहानी की सबसे बड़ी समस्या अपनी अस्मिता या पहचान को बचाने के लिए जूझते एक परेशान व गरीब नागरिक की है जो अपनी पहचान तक साबित नहीं कर पाता और जब वह कुछ ईमानदार लोगों के सहयोग से अपनी पहचान साबित करने की कोशिश करता है तो समाज के दबंग लोग भ्रष्ट प्रशासन तंत्र के साथ मिलकर उसे अपनी पहचान छोड़ने के लिए मजबूर कर देते हैं। अपना हक पाने के लिए मोहन दास जीवन भर लड़ाई लड़ता है, लेकिन उसका प्रतिकार और प्रतिरोध नक्कारखाने में तूती की आवाज़ की तरह घुट कर रह जाता है। उसे कहीं भी न्याय नहीं मिल पाता और अंततः **''अंग्रेजों द्वारा गुलाम भारत पर शासन के लिए तैयार किये गये नौकरशाही के इस जंग खाए लौहढांचे ने, आज़ादी के साठ साल बाद, आधिकारिक सरकारी दस्तावेज़ पर, विश्वनाथ वल्द नगेंद्रनाथ को मोहन दास वल्द काबा दास बना दिया।''14** पुलिस की हर रोज़ की मार और दबंग लोगों के अत्याचार के आगे वह अपने घुटने टेक देता है और चैन से जीने के लिए

अपना सब कुछ छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। उदय प्रकाश ने कहानी के अंत को बड़े ही दर्दनाक तरीके से दिखाया है। क्या इससे बड़ी कोई यातना और धोखा हो सकता है, क्या इससे अधिक क्रूर और शातिर समय हो सकता है, जब पूँजीपति और सत्ता में बैठे शक्तिशाली लुटेरे आपकी पहचान छीन कर वो होने या बनने पर न सिर्फ मजबूर कर दें जो असल में आप नहीं हैं बल्कि ये साबित भी कर दें। जब सच्चाई ही अपनी अस्मिता को छोड़ने के लिए तैयार हो जाती है तो लेखक का निम्न वक्तव्य हमें झकझोर कर रख देता है–**''मैं आप लोगों के हाथ जोड़ता हूँ। मुझे किसी तरह बचा लीजिए। मैं किसी भी अदालत में चलकर हलफनामा देने के लिए तैयार हूँ कि मैं मोहन दास नहीं हूँ।..... जिसे बनना हो बन जाए मोहन दास। मैं नहीं हूँ मोहन दास। मैंने कभी बी.ए. नहीं किया। कभी टॉप नहीं किया। मैं कभी किसी नौकरी के लायक नहीं रहा। बस मुझे चैन से ज़िंदा रहने दिया जाये।''15**

इस प्रकार हम देखते हैं कि उदय प्रकाश ने 'मोहनदास' कहानी के माध्यम से देश में दलित समाज की समकालीन दशा एवं दिशा का जीवंत एवं यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत करते हुए विभिन्न सामाजिक, प्रशासनिक, आर्थिक और नैतिक समस्याओं से हमें रूबरू करवाया है और इन समस्याओं के खिलाफ लड़ने की जीजिविषा दिखाई है, भले ही परिणाम चाहे कुछ भी हो।

संदर्भः–

1. हंस, नवम्बर 2005, पृ.सं. 12
2. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 13
3. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 30–31
4. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 51
5. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. –वही–
6. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 69
7. हंस, नवम्बर 2005, पृ.सं. 12
8. डॉ श्यौराज सिंह 'बेचैन', गाँधी–अंबेडकर हरिजन जनता, समता प्रकाशन, दिल्ली–2007, पृ.सं. 45
9. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 54
10. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 14
11. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 47
12. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 17
13. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 65–66
14. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 70
15. उदय प्रकाश, मोहनदास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली–2013, पृ.सं. 85